International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(1): 20-22

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(1): 20-22
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-11-2015
Accepted: 19-12-2015

परिमल मण्डल
शोध छात्र
पाण्डिच्चेरी विश्वविद्यालय

Correspondence
परिमल मण्डल
शोध छात्र
पाण्डिच्चेरी विश्वविद्यालय

योगदर्शन में अविद्या का स्वरूप

परिमल मण्डल

महर्षि पतञ्जलि ने योग के परिभाषा देते हुए कहा है- **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** ।[1] उनके अनुसार ये चित्तवृत्तियाँ पाँच प्रकार के है- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति । इन पाँचो वृत्तियों मे इस विपर्यय वृत्ति को अविद्या तथा तम आदि नामों से जाना जाता है।[2] ग्रन्थकार विपर्यय वृत्ति को लक्षण करते है-

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।।[3]

अर्थात् वस्तु के यथार्थ रूप में स्थित न होने वाला मिथ्याज्ञान ही विपर्यय नाम की वृत्ति है । जैसे कि शुक्ति का शुक्ति के रुप में ज्ञान न होकर जब रजत के रुप में ज्ञान होता है तब उसे विपर्यय कहा जाता है । ये विपर्यय वृत्ति अविद्या, अज्ञान, माया, अध्यास आदि नामों से प्रचलित है । महर्षि पतञ्जलि के अनुसार यह विपर्यय स्वरूप अविद्या पाँच प्रकार की है- अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष, अभिनिवेश ।[4] ये अविद्यादि क्लेश का हेतु होने से ग्रन्थकार इसे पञ्चक्लेश कहते है । भाष्यकार व्यास ने अविद्यादि को तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र नामों से व्यवहृत किया है ।[5] विष्णुपुराण में अविद्यादि पाँचो क्लेशों के तम, मोहादि नामों से वर्णन किया है-

तमो मोहो महामोहोस्तामिस्रो ह्यन्धसज्ञकः
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।। [6]

अर्थात् महात्माओं के कल्याण मार्ग में विघ्न करने के लिये तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र के भेद से पञ्चपर्वा अविद्या प्रकट हुई है । सांख्यकारिका के रचयिता ईश्वरकृष्ण ने इन तम आदि का 62 प्रकार अवान्तर भेदों का वर्णन किया है । [7] इन अविद्यादि का वर्णन निम्न प्रकार से है-

अविद्या

महर्षि पतञ्जलि पाँच क्लेशों में से सर्वप्रथम अविद्या का वर्णन किया है। ग्रन्थकार के अनुसार अविद्या ही सारे क्लेशों का मूल कारण है। इसलिये यह प्रमूख है । अविद्या के कारण ही क्लेश उनकी प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार चार अवस्थाओं मे रहता है। भाष्यकार व्यास ने अस्मितादि के प्रसवभुमि मानते हुये इसे चार प्रकार के विकल्प से युक्त माना है।[8] ग्रन्थकार अविद्या का लक्षण करते हुए कहते है-

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।[9]

अर्थात् अनित्य, अपवित्र, दुःख, और अनात्मा में आत्मख्याति ही अविद्या है। भोजवृत्ति के अनुसार-

अतस्मिंस्तदिति प्रतिभासोऽविद्येत्यविद्यायाः सामान्यलक्षणम् ।[10]

अर्थात जिस में जो धर्म नहीं है उसमें उसका भान अविद्या कहलाता है। साधारण शब्द में पदार्थों का वास्तविक स्वरूप को जानना ही अविद्या है । महर्षि पतञ्जलि ने अविद्या के लक्षण सूत्र में चार प्रकार के भेदों का वर्णन किया है-

1) अनित्य में नित्य का ज्ञान होना।
2) अपवित्र में पवित्रता का बोध।
3) दुःख में सुख की अनुभुति होने का ज्ञान।
4) अनात्मा में आत्मा की अनुभुति होना।

अनित्य में नित्य का ज्ञान होना

व्यास भाष्य के अनुसार इन अनित्य पदार्थ में नित्यपदार्थ का जो ज्ञान होता है वही अविद्या है। जैसे घट अनित्य है, पृथिवी नित्य है, चन्द्रमा और तारों वाला स्वर्गलोक अनित्य है, स्वर्गवासी देवगण अमर है।[11] भगवद्गीता में इसप्रकार से अविद्या को मानी जाती है –

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।[12]

अनित्य पदार्थों में नित्य पदार्थ का ज्ञान होना प्रथम प्रकार का अविद्या है । आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार-वे पदार्थ अनित्य है जो एक निर्दिष्टकाल तक रहते है तथा तदुपरान्त नष्ट हो जाते है।[13] और जो पदार्थ काल की सीमा से परे है और जिनका कभी नाश नहीं होता है वह नित्य है।[14]

अपवित्र में पवित्रता का बोध

अपवित्र वस्तुको पवित्र समझना दुसरे प्रकार के अविद्या है। जैसे कि अत्यन्त अपवित्र शरीर को पवित्र मानना-

तथाऽशुचौ परमबीभत्से कार्ये शुचिख्यातिः ।[15]

शरीर को अपवित्र के विषय में भाष्यकार पौराणिक वचन को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है-

स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निः स्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः।।[16]

इसका अभिप्राय यह है कि- अत्यन्त अपवित्र माता की कुक्षि में निवास करने तथा अपवित्र स्थान द्वारा उत्पन्न होने से, माँ बाप के दूषित रज-वीर्य का परिणाम होने से, अशित-पीत अन्न-जलादि के परिपाक से बने हुए अपवित्र रस, रक्त, मांस, मेदा तथा मज्जा आदि धातुओं के आश्रित होने से, मलमूत्र आदि अपवित्र वस्तुओं के उद्गम स्थान होने से, मरने से, बाह्य मृत्तिका, जल आदि से पवित्रता का आरोप करने से- तत्ववेत्ता जन इस शरीर को अपावन ही मानते है ।[17] विज्ञानभिक्षु भी इन्ही कारणों से शरीर को अपवित्र मानता है । व्यासदेव इस अपवित्र पदार्थ में पुण्य का ज्ञान और अर्थपूर्ण कार्य में सार्थक कार्य का ज्ञान अविद्या कहा है ।[18] वाचस्पति मिश्र के अनुसार- हिंसादि अपूण्य कर्मों से संसार की मुक्ति रूप पुण्य फल को माना जाना उक्त प्रकार अविद्या हैं ।[19] विज्ञानभिक्षु को भी यही मत है ।[20] इस प्रकार से अर्जन, रक्षण आदि दुःखो से युक्त अनर्थरूप धनादि में जो अर्थबुद्धि होती है वह भी मिथ्याज्ञानरूप अनित्य ही है। यह सब घृणित होने से अशुची ही है।

दुःख में सुख की अनुभुति होने का ज्ञान

दुःखकारी विषयों के सुखकारी मानकर उनको सुख के रूप में समझना ही तृतीय प्रकार की अविद्या है । सामान्य मनुष्य अविद्या के कारण ही पदार्थों का सुखदायक और दुखदायक समझता है । परन्तु वास्तव में किसी पदार्थ को सुखदायक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि परिणाम, ताप, और संस्काररूप दुःख के कारण और गुणों की वृत्ति के विरोध के कारण विवेकी पुरुष के लिये सब कुछ दुःखमय ही है –

तथा दुःखे सुखख्यातिं वक्ष्यति परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः तत्र सुखख्यातिरविद्या ।[21]

इस प्रकार से दुःखो में जो सुख का भान होता है वह अविद्या है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार जो साधक सामान्य दुःखो के प्रतिकार को ही तात्विक परमार्थ सुख का साधन मानते है वे इसप्रकार की अविद्या से ग्रस्त है।[22]

अनात्मा में आत्मा की अनुभुति होना

भाष्यकार व्यास के अनुसार बाह्य साधन स्त्री, पुत्र, भृत्यादि चेतन पदार्थों में एवं शय्या, आसन, गृह, धनादि अचेतनरूप अनात्म पदार्थो में जो आत्मरूप होती है अथवा भोग के अधिष्ठानरूप शरीर में अथवा पुरुष के सुख दुःखरूप भोग के साधन आत्मभिन्न मन में जो आत्मबुद्धि होती है वह अविद्या ही है।[23] विज्ञानभिक्षु के मतानुसारे शरीर से अतिरिक्त बाह्य उपकरण पुत्रादि में जो अहम् बुद्धि है एवं विषयभोग के अवच्छेदक होने से अन्तःकरण में जो अहम् बुद्धि होती है वह अविद्या या अज्ञान के कारण ही मनुष्य को पुनः पुनः संसार में जन्म लेना पड़ता है।[24] यह चतुर्थ प्रकार अविद्या के कारण ही संसार में जन्म लेना पड़ता है । इस चतुर्थ प्रकार की अविद्या के विषय में पञ्चशिखाचार्य ने कहा है-

व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाभिप्रतीत्य तस्य संपदमनु नन्दत्यात्मसंपदं मन्वानस्तस्य व्यापदमनु शोचत्यात्मव्यापदं मन्वानः स सर्वोऽप्रतिबुद्धः इति ।।[25]

अस्मिता- ग्रन्थकार विपर्यय वृत्ति को लक्षण करते है- **दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।[26]** अर्थात् दृक्

शक्तिरूप पुरुष तथा दर्शन शक्तिरूप बुद्धि की जो अभिन्नता न होनेपर भी अभिन्नता जैसा प्रतीत होती है वह अस्मिता है ।

राग- ग्रन्थकार राग को परिभाषित करते हुये कहते है- **सुखानुशयी रागः** ।[27] अर्थात सुखभोग के अनन्तर अन्तःकरण में रहनेवाले जो जो तृष्णारूप क्लेश है वह राग कहलाता है ।

द्वेष- ग्रन्थकार द्वेष को परिभाषित करते हुये कहते है- **दुःखानुशयी द्वेषः** ।[28] अर्थात् दुःख होनेवाले पदार्थ के प्रति क्रोध या घृणा को द्वेष कहते है ।

अभिनिवेश- ग्रन्थकार अभिनिवेश को परिभाषित करते हुये कहते है- **स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः** ।[29] अर्थात् अज्ञानियों की तरह ज्ञानियों के अन्तःकरण में भी मृत्यु का भय अभिनिवेश कहलाता है।

अतएव उपर्युक्त वर्णन से यह पता चलता है संसार में बन्धन के मूल कारण अविद्या ही है । इसी कारण व्यक्ति को संसार में आवागमन करना पड़ता है । इसी बात को सभी भारतीय दर्शनों ने अलग अलग नाम से स्वीकार करते है । जैसे कि अविद्या को सांख्यदर्शन में विपर्यय नाम से, वेदान्तदर्शन में अध्यास नाम से अभिहित किया गया है । उपनिषदों में यह शक्तिरूप तत्व अज्ञान, माया, अविद्या आदि नामों से जाना जाता है । और योगदर्शन में इस विपर्यय, अध्यास तथा अज्ञान आदि को ही क्लेश नाम से अभिहित किया गया है । अतः कहा जा सकता है कि अज्ञान तथा अविद्या योगदर्शन में एक मौलिक तत्व के रूप में सुप्रतिष्ठित है ।

सन्दर्भ-

1. योगसूत्र 1/1
2. हिन्दी पातञ्जल योगदर्शन पृ 35
3. योगसूत्र 1/8
4. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।।2.3।।
5. एत एव स्वसंज्ञाभिस्तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्र इति। योगसूत्र व्यासभाष्य-1/8
6. हिन्दी पातञ्जल योगदर्शन पृ. 36
7. भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः । तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः ।। सांख्यकारिका 48
8. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्।। योगसूत्र 2/4
9. योगसूत्र 2/5
10. योगसूत्र भोजवृत्ति- पृ.147
11. अनित्ये कार्ये नित्यख्यातिः। तद्यथा ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा सचन्द्रतारका द्यौः। अमृता दिवौकस इति। योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2/16
13. अनित्यत्वमस्तवं कालनिष्ठाभावप्रतियोगित्वमिति यावत् । योगवार्तिक पृ 149
14. नित्यत्वं च सत्त्व । योगवार्तिक पृ 149
15. योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
16. योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
17. हिन्दी पातञ्जल योगदर्शन 149
18. एतेनापुण्ये पुण्यप्रत्ययस्तथैवानर्थे चार्थ प्रत्ययो व्याख्यातः। योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
19. तत्ववैशारदी पृ 148
20. योगवार्तिक पृ.150
21. योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
22. योगवार्तिक पृ.150
23. तथाऽनात्मन्यात्मख्यातिर्बाह्योपकरणेषु चेतनाचेतनेषु भोगाधिष्ठाने वा शरीरे पुरुषोपकरणे वा मनस्यनात्मन्यात्मख्यातिरिति। योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
24. योगवार्तिक पृ.150
25. योगसूत्र व्यासभाष्य-2/5
26. योगसूत्र 2/6
27. योगसूत्र 2/7
28. योगसूत्र 2/8
29. योगसूत्र 2/9

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. डा. रमाशंकर त्रिपाठी, 2007, हिन्दी पातञ्जल योगदर्शन, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी ।
2. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, 2011, पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी
3. डा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, 2009. चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी ।
4. करमला, 1988, सांख्ययोग एवं अद्वैत में अविद्या या अज्ञान, एम. फिल. शोधप्रवन्ध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय ।
5. जगदीशचन्द्र बोस, 2012, भारतीय दर्शन, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी ।